तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ४ अंक ३ : जुलाई १९८०

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ४ : अंक ३
जुलाई १९८०

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

कलकत्ता के जैन मन्दिर ६९
कुमारपाल देव ७७
श्रीपाल ८१
जैन विज्ञान ८७
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ९६

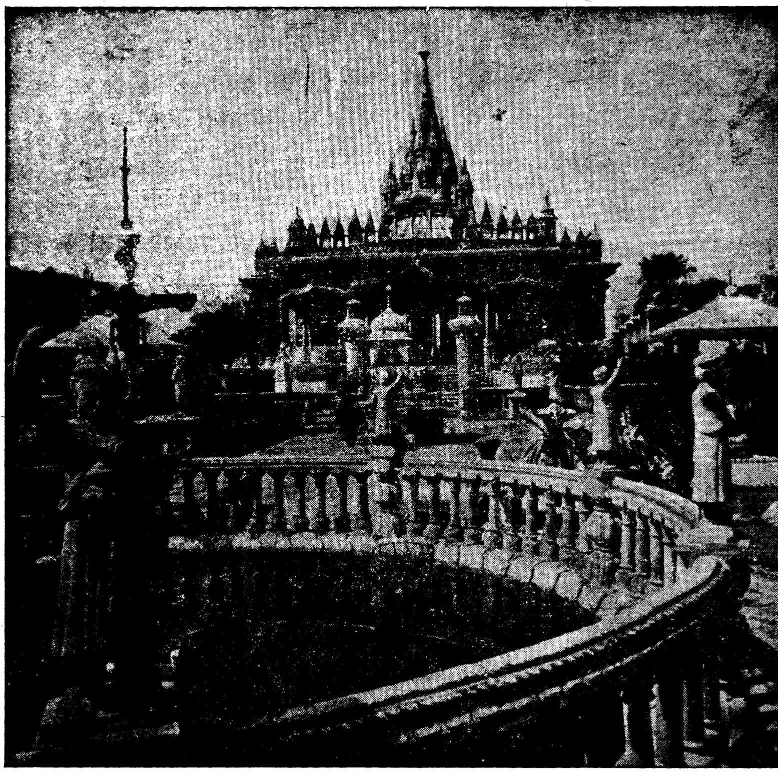

श्री शीतलनाथ स्वामी का मन्दिर

कलकत्ता के जैन मन्दिर

कलकत्ता आज महानगरी के रूप में विश्व-विश्रुत होने पर भी खूब प्राचीन शहर नहीं है। अतः किसी प्राचीन ग्रन्थ में इसका उल्लेख हम नहीं पाते। इसका सर्वप्रथम उल्लेख हम पाते हैं बंगाल के कवि विप्रदास के 'मनसा मंगल' में (ई० सन् १४९५-९६)। 'आइन-ए-अकबरी' (१५९६) में इसका जो वर्णन मिलता वहाँ इसे सप्तग्राम के अन्तर्गत कहकर अभिहित किया गया है। कवि कंकण के 'चण्डी मंगल' में भी इसका उल्लेख है जो कि १५७४ से १६०४ के मध्य किसी समय रची गयी थी। किन्तु कलकत्ते का सच्चा इतिहास प्रारम्भ होता है सन् १६९० से जबकि जाब चार्नक ने सूतानटी में अंग्रेज कोठी स्थापित की और सन् १६९८ में सावर्ण चौधरियों से सूतानटी, कलकत्ता और गोविन्दपुर ग्राम खरीदकर आत्म-रक्षा के लिए दुर्ग निर्माण करना आरम्भ किया। इसके पश्चात् कलकत्ते का क्रमिक विकास होते-होते उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व तक इसकी जनसंख्या एक लाख सत्तर हजार हो गयी थी। कलकत्ते के मूल निवासियों की संख्या सामान्य ही थी, अधिकांश लोग तो बाहर से ही आए हुए थे। इन्हीं बाहरी लोगों की भाँति जैन भी बाहर से ही यहाँ आए थे। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जैन धर्म इसके पूर्व बंगाल में था ही नहीं। प्राचीन शिलालेखों एवं ह्वेनषांग जैसे प्रमुख पर्यटकों के विवरण से यह ज्ञात होता है कि बंगाल में प्रारम्भ से ही बहुसंख्यक जैन निवास करते थे। डा० प्रबोधचन्द्र सेन ने अपने 'बांगलार आदि धर्म' प्रबन्ध में जैन धर्म को ही बंगाल का आदि धर्म कहकर अभिहित किया है। उन जैनों के वंशधर आज भी बंगाल में निवास करते हैं जो कि अब सराक नाम से परिचित हैं। ये प्रधानतः बाँकुड़ा, वीरभूम, पुरुलिया, वर्द्धमान, विष्णुपुर आदि अंचलों में रहते हैं।

फिर भी यह सत्य है कि कलकत्ता या बंगाल में जो भी जैन रहते हैं या जहाँ भी उनकी बस्तियाँ पायी जाती है वे सभी पश्चिम से ही आए हैं। इस देश में ये लोग व्यवसाय वाणिज्य के लिए ही आए थे। प्रथम ढाका तत्पश्चात् मुर्शिदाबाद इनका केन्द्र बन गया था। पलासी युद्ध के पश्चात् जब कलकत्ता और अधिक विकसित हुआ तब इन्होंने भी मुर्शिदाबाद, वाराणसी, राजस्थान आदि अन्य अंचलों से आकर यहाँ बस्तियाँ स्थापित कीं। लेकिन कौन परिवार

कब यहाँ आकर बसा यह प्रमाण के अभाव में आज कहना मुश्किल है। फिर भी जनश्रुति के अनुसार सर्वप्रथम यहाँ जैन जौहरी लोग आए और १३६ नं० कॉटन स्ट्रीट जहाँ कि आज श्वेताम्बर पंचायती जैन मन्दिर है के आस-पास वाले अंचलों में अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं। तदुपरान्त एक के बाद एक परिवार आते गए और इसी अंचल में बसते गए। क्योंकि उन दिनों बिखरे हुए रूप में रहना वे निरापद नहीं समझते थे। इसीलिए राय बद्रीदासजी ने हरीसन रोड पर जब अपना विशाल और भव्य मकान बनवाया यह उनके लिए तब आश्चर्यजनक था। जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर के पुराने खाता-पत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि इन्हीं जौहरियों के आगमन के साथ-साथ बहुत से मारवाड़ी भी उसी समय यहाँ आ बसे थे। जौहरियों में श्रीमाल जाति के एवं मारवाड़ियों में ओसवाल जाति के जैन लखनऊ, फैजाबाद, सहारनपुर, वाराणसी, सुदूर दिल्ली, जयपुर, झुंझनु आदि शहरों से आकर यहाँ बसे थे। राय बहादुर बद्रीदासजी भी लखनऊ से ही यहाँ आए थे। इनका कलकत्ता आगमन जैन समाज के लिए एक उल्लेखयोग्य घटना है। इसका वर्णन आगे जाकर किया गया है। इन श्रीमाल और ओसवालों में जो मुर्शिदाबाद से आए थे वे शहरवाली कहे जाते हैं। शायद मुर्शिदाबाद शहर से आने के कारण ही उन्हें ऐसा सम्बोधित किया जाता है। क्योंकि उन दिनों मुर्शिदाबाद की तुलना में कलकत्ता एक छोटा ग्राम ही तो था। इस प्रकार जौहरी, मारवाड़ी और शहरवाली इन तीनों का मिलाजुला समाज ही कलकत्ते का जैन समाज है।

जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर : १३६ नं० कॉटन स्ट्रीट में जहाँ आज जैन-श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर अवस्थित है, वहाँ पहले धीरज सिंहजी जौहरी निवास करते थे। उन्होंने अपने निवास स्थान की दूसरी मंजिल के एक कक्ष में गृह मन्दिर बनवाकर भगवान आदिनाथ की एक मूर्ति मुर्शिदाबाद से यहाँ लाकर प्रतिष्ठित की। इस मूर्ति पर लिखे शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस मूर्ति का निर्माण आखेराम (अक्षय राम जी) गोलेछा ने करवाया और १८५६ की वैशाख शुक्ला तृतीया को खरतरगच्छ नायक श्री जिन चन्द्र सूरि जी ने इसकी प्रतिष्ठा की। इसकी प्रतिष्ठा भागलपुर की चम्पापुरी में हुई एवं शायद आखेराम जी चम्पापुरी से इस मूर्ति को अजीमगंज (मुर्शिदाबाद) ले आए। उन्हीं से धीरज सिंह जी इस मूर्ति को कलकत्ता लाकर सम्वत् १८५६-१८६७ के बीच किसी समय इसे अपने गृह मन्दिर में स्थापित की थी। गृह मन्दिर बनवाने के पश्चात् धीरज सिंह जी ने मन्दिर सहित अपना

वास भवन समाज को सौंप दिया। उसी गृह मन्दिर को जैन समाज ने वृहद् रूप देते हुए उस पूरे आवास को ही शिखर युक्त मन्दिर में रूपान्तरित कर दिया। वर्तमान में इस मन्दिर के मुख्य मूलनायक हैं भगवान शान्तिनाथ। सम्वत् १८७१ (सन् १८१५) में शान्तिनाथ स्वामी की यह मूर्ति प्रतिष्ठित हुई थी। इसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छ नायक श्री जिनहर्षसूरिजी ने की। मन्दिर का जैसे-जैसे प्रसार होता गया वैसे-वैसे द्वितीय मंजिल पर भगवान महावीर, पार्श्वनाथ, मुनि सुव्रत स्वामी, पद्म प्रभ आदि अन्य भी तीर्थंकरों की मूर्तियाँ एवं दादा गुरुदेव कुशलसूरिजी की वेदी भी प्रतिष्ठित हुई। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर में अन्य भी बहुत-सी पाषाण एवं धातु निर्मित प्रतिमाएँ हैं जिनमें भगवान धर्मनाथजी की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा के दिन जो सवारी निकलती है उसमें इसी प्रतिमा को रजत-सुवर्णमयी पालकी में स्थापित कर लोग कन्धों पर वहन करते हुए भक्ति-भाव से बद्रीदास टेम्पल स्ट्रीट स्थित दादावाड़ी में ले जाते हैं और तीसरे दिन फिर लौटा लाते हैं।

दादावाड़ी : १३६ नं० कॉटन स्ट्रीट स्थित मन्दिर के उन्नयन के साथ-साथ जैन समाज ने माणिक तल्ला के निकट वृहद् भूमि क्रय कर उसमें उपवन और मन्दिर का निर्माण करवाया। खरतरगच्छ में चार प्रमुख आचार्य श्री जिनदत्तसूरि, श्री जिनकुशलसूरि, श्री जिनचन्द्रसूरि, मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि दादा गुरुदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें श्री जिनचन्द्र सूरि अकबर के समसामयिक थे। इन लोगों ने जैन समाज को दृढ़ मूल और जिन शासन का प्रसार जिस आत्मीयता और लगन से किया उसके कारण ही इस पितामह की उपाधि से ये विभूषित हुए। खरतरगच्छीय जैन जहाँ भी रहते हैं वहाँ जिन मन्दिर के साथ-साथ दादावाड़ियों का निर्माण भी अवश्य करवाते हैं। कलकत्ते की दादावाड़ी की प्रतिष्ठा सम्वत् १८६७ (सन् १८११) की आषाढ़ शुक्ला नवमी के दिन पार्श्वचन्द्र गच्छीय जैनाचार्य श्री लब्धिसूरि द्वारा हुई थी।

शीतलनाथ मन्दिर : राय बद्रीदास का उल्लेख पूर्व ही किया गया है। वे लखनऊ के श्रीमाल वंशीय सौंधड़ गोत्रीय एक साधारण परिवार में सम्वत् १८८६ की अगहन सुदी ग्यारस (२६ नवम्बर, १८३२) के दिन जन्मे थे। इनकी माता का नाम खुशाल कुमारी और पिता का नाम कालकादासजी था। खुशाल कुमारी धर्मपरायणा महिला थीं। बद्रीदासजी जिस समय २० या २२

वर्ष के थे तभी भाग्यान्वेषण के लिए कलकत्ता आए। कहा जाता है श्री पूज्य जी के आशीर्वाद से उन्हें एक बहुमूल्य रत्न मिला जिसे विक्रय कर उन्होंने प्रभूत अर्थ उपार्जन किया। उसी अर्थ से उन्होंने जवाहिरात का कार्य प्रारम्भ किया। जिससे उन्हें लाखों की प्राप्ति हुई। सन् १८६६ में भारत सरकार ने इन्हें सरकारी जौहरी के रूप में नियुक्त किया। इसके ठीक दो वर्ष पश्चात् ही वे बड़े लाट के मुकीम बने। सन् १८७६ में सप्तम एडवर्ड जब युवराज रूप में (प्रिन्स ऑफ वेल्स) भारत परिभ्रमण को आए तो इन्होंने उन्हें अनेक दुष्प्राप्य अलंकार और मूल्यवान रत्न दिखाए। सन् १८७७ में भारत सरकार ने इन्हें राय बहादुर की उपाधि से विभूषित किया।

राय बद्रीदास वैषयिक उन्नति करने पर भी व्यक्तिगत जीवन में बड़े ही धर्मनिष्ठ थे। कलकत्ता पिंजरापोल और जौहरी बाजार के धर्म काँटे के आप प्रतिष्ठाता थे। कॉटन स्ट्रीट स्थित जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर के आप ट्रष्टी थे। हरीसन रोड के वास स्थान में भी एक गृह-मन्दिर था। भद्दिलपुर तीर्थ की स्थापना के लिए आपने पूरा पर्वत ही खरीद लिया था। सम्मेत शिखर महातीर्थ पर पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण और तीर्थ को पालगंज के राजा से खरीद लेने में भी आप अग्रणी थे।

जिस दादावाड़ी का पूर्व उल्लेख हो चुका है उसी के सामने कुछ जमीन विक्रय को थी, आपने वह खरीद ली। यह बात आपने अपनी माँ से कही। माँ ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। अतः विषण्ण होकर बद्रीदास जी ने इसका कारण जानना चाहा। उस भक्तिमती महिला ने कहा—"तुम उस स्थान पर उद्यान बनवाओगे, तालाब खुदवाओगे इसमें प्रशंसनीय क्या है ? यदि तुम वहाँ जिन मन्दिर बनवाओ तब तो उससे लोगों का भी कल्याण होगा और तुम्हारी कीर्ति भी अक्षय होगी।" माँ का कथन बद्रीदास जी की अन्तरात्मा को स्पर्श कर गया। अतः उन्होंने मुक्तहस्त से अर्थ व्यय कर वहाँ अपूर्व सुन्दर एक ऐसे मन्दिर का निर्माण करवाया जो अपनी विशिष्टता में समुज्ज्वल है। इस मन्दिर को देखने केवल अपने देश के लोग ही नहीं, विदेशी पर्यटक भी आते हैं। इस मन्दिर में जो काँच और मीनाकारी का कार्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

मन्दिर निर्मित हो जाने पर बद्रीदास जी के गुरु श्री जिनकल्याण सूरि ने उस मन्दिर में भगवान शीतलनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित करने को कहा और उसका समय भी निर्धारित कर लिया। किन्तु उनके मनोनुकूल शीतलनाथ स्वामी की प्रतिमा बहुत खोज अनुसन्धान के पश्चात् भी नहीं मिली। तभी किसी

काम से वे आगरा गए। वहाँ एक वृद्ध सन्त उन्हें रोशन मोहल्ला के जैन मन्दिर में ले गए और बोले—'इस मन्दिर के भूमिगृह में तुम मनोनुकूल मूर्ति पाओगे। राय बद्रीदास भूमिगृह द्वार का पाषाण हटाकर नीचे उतरे और वही मूर्ति देखी जो कि आज उस मन्दिर में प्रतिष्ठित है। कुछ लोगों की सहायता से वे मूर्ति को ऊपर लाए। इतनी देर तक तो वे सन्त इनके साथ ही थे तदुपरान्त वे कहाँ अन्तर्हित हो गए बहुत खोज अनुसन्धान के पश्चात् भी नहीं मिले। बद्रीदास उस मूर्ति को कलकत्ता ले आए। उनके गुरु श्री जिन कल्याणसूरि ने सम्वत १९२३ में इस मूर्ति को प्रतिष्ठित किया। वैसे आगरा निवासी संघपति चन्द्रपाल द्वारा आगरा में तो यह मूर्ति सतरहवीं शताब्दी में ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। बद्रीदासजी की माँ जिनकी प्रेरणा से यह मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ इस उत्सव को नहीं देख सकीं। सम्वत् १९२१ में ही उनका देहावसान् हो गया था।

महावीर स्वामी मन्दिर : दादावाड़ी संलग्न ठीक उत्तर की ओर यह मन्दिर अवस्थित है। सम्वत् १९३६ (सन् १८७९) में जौहरी सुखलालजी टाँक ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। इसकी प्रतिष्ठा श्री शान्तिसागर सूरि ने की थी।

चन्द्रप्रभ मन्दिर : श्री शीतलनाथ स्वामी मन्दिर के दाहिनी ओर चन्द्रप्रभ मन्दिर अवस्थित है। इसका निर्माण जौहरी कपूरचन्द जी खारड़ ने करवाया था और प्रतिष्ठा की थी लखनऊ के खरतरगच्छाचार्य श्री जिनरत्नसूरि ने।

महावीर जिनालय : ९६ नं० कैनिंग स्ट्रीट (वर्तमान विप्लवी रास बिहारी बसु रोड) में यह मन्दिर अवस्थित है। सम्वत् १९८६-८७ (सन् १९२९-३०) में मुनि श्री दर्शन विजय जी ने यहाँ चातुर्मास किया। उनकी प्रेरणा से यह गृह मन्दिर स्थापित हुआ। आबू से सपरिकर महावीर मूर्ति लाकर इसमें प्रतिष्ठित की गयी। उसके कई वर्षों पश्चात् इस मन्दिर को भी वृहद् रूप देने की परिकल्पना की गयी। सम्वत् २०१० में (सन् १९५३) मन्दिर निर्माण कार्य शेष हुआ और जैनाचार्य श्री विजयरामचन्द्र सूरि द्वारा यह प्रतिमा नवीन मन्दिर में प्रतिष्ठित हुई। यह मन्दिर गुजराती जैनियों का है।

पार्श्वनाथ जिनालय : भवानीपुर स्थित गुजराती जैनों द्वारा ही यह मन्दिर भी ११ ए, हेसम रोड में सम्वत् २०१८ (सन् १९६१) में प्रतिष्ठित हुआ। वृहद् भूखण्ड पर अवस्थित होने पर भी आकार में छोटा किन्तु मनोरम है। इसको फिर से वृहद् बनाने की परिकल्पना है।

आदिनाथ जिनालय : ४६ न० इण्डियन मिरर स्ट्रीट में सुप्रसिद्ध पुरातत्व-विद् स्वर्गीय पूरणचन्द जी नाहर ने अपने भाई कुमार सिंह की स्मृति में कुमार सिंह हॉल का निर्माण करवाया। इस मकान के तीसरे तल्ले पर सन् १६१६ में आदिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा हुई। इस मन्दिर के एक कक्ष में स्फटिक निर्मित तीन विशाल प्रतिमाएँ हैं जो कि विशेष उल्लेखनीय हैं। नाहर परिवार के पुराने ग्रन्थ और चित्रादि का एक सुन्दर संग्रह भी यहाँ है।

जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के उपरोक्त मन्दिरों के अतिरिक्त और भी कई जिनालय हैं जिन्हें गृह मन्दिर कहकर अभिहित किया जा सकता है। जैसे :

१) ११३ चित्तरंजन एवेन्यु के चतुर्थ तल्ले पर श्री सवाईलाल केशवलाल साह के घर में भगवान कुन्थुनाथ का मन्दिर है। सन् १६५५ (सम्वत् २०११) में इसकी प्रतिष्ठा जैनाचार्य श्री विजयराम सूरि ने की थी।

२) १ ए चेतन सेठ लेन के दो तल्ले पर श्री छोटमल जी सुराना के मकान में पार्श्वनाथ गृह चैत्यालय है।

३) ४१ नं० शिवतल्ला स्ट्रीट में (ढाकापट्टी) श्री राजमल जी कोचर के मकान में भी पार्श्वनाथ मन्दिर है।

४) ४ नं० क्रीक रो में भूपत सिंह दूगड़ के मकान में आदिनाथ चैत्यालय है।

५) ३४/१ बालीगंज सर्कूलर रोड पर श्री सुरतसिंह जी दूगड़ के घर वासुपूज्य जिनालय है।

यह जिनालय १६४६ में प्रतिष्ठित हुआ। इसमें वासुपूज्य स्वामी की रजतमय, पार्श्वनाथ स्वामी की स्फटिकमय और अभिनन्दन स्वामी की रक्तवर्ण प्रस्तर की प्रतिमा दर्शनीय है।

६) पाथुरियाघाट स्ट्रीट में श्री विजयसिंह जी बोथरा के घर अभी कुछ दिन पूर्व एक जिनालय स्थापित हुआ है।

वे मन्दिर भी जो कि पहले थे अब नहीं हैं उनकी तालिका इस प्रकार है :

१) १५२ न० हरीसन रोड में राय बद्रीदास जी का गृह स्थित जिनालय।

२) बड़तल्ला स्ट्रीट में माधोदास जी के घर सम्भवनाथ जी का जिनालय।

३) केनिंग स्ट्रीट में माधोलाल जी दूगड़ का गृह मन्दिर जहाँ सम्भवनाथ जी की प्रतिमा थी।

४) हरीसन रोड पर जीवनदास प्रतापचन्द्र का घर देहरासर जिसमें शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा थी।

५) माणिकतल्ला में यति पन्नालाल जी का गृह मन्दिर।

६) १९ न० सिकदर पाड़ा स्ट्रीट में राय बुधसिंह जी हीरालाल जी मुकीम का गृह मन्दिर।

इन समस्त गृह-मन्दिरों की प्रतिमाएँ वर्तमान में जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर में हैं या शीतलनाथ मन्दिर में सुरक्षित हैं।

जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय की भाँति जैन दिगम्बर सम्प्रदाय भी प्रथम से ही कलकत्ते में आकर बसना प्रारम्भ कर दिया था। इन्होंने भी जो मन्दिर बनवाए उसका वर्णन इस प्रकार है :

दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर : १ न० वैशाख लेन में सन् १८२६ में हुलासीलाल अग्रवाल ने इस मन्दिर का निर्माण करवाकर समाज को दान कर दिया। इस मन्दिर से कार्तिक पूर्णिमा को प्रतिवर्ष दिगम्बर जैन समाज की रथ-यात्रा निकाली जाती है जो कि यहाँ से निकलकर बेलगछिया के दिगम्बर जैन मन्दिर में जाती है। सातवें दिन पुनः वहाँ से प्रत्यावर्तन कर इसी मन्दिर में आ जाती है। कलकत्ता दिगम्बर समाज का यह प्राचीन मन्दिर है।

पुरानी वाड़ी : ३५ न० ब्रजदुलाल स्ट्रीट में यह मन्दिर अवस्थित है। दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर के निर्माता हुलासीलाल जी अग्रवाल यहीं रहते थे। उन्होंने अपने व्यवहार के लिए यहाँ एक मन्दिर का निर्माण करवाया था। वे निःसन्तान थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् वह गृह मन्दिर सार्वजनिक मन्दिर में परिवर्तित हो गया। वृद्धिचन्द जी सरावगी ने इसका संस्कार कर इसे संगमरमर का बना दिया। ढाका के प्राचीन जैन मन्दिर से प्रतिमा लाकर यहाँ प्रतिष्ठित की गयी।

बेलगछिया पार्श्वनाथ उपवन : बेलगछिया पार्श्वनाथ मन्दिर और उपवन बेलगछिया ब्रिज के पास है। इस स्थान को हरसहाय बाबू के वंशधर छन्नूलाल जी जौहरी ने सन् १८९७ में खरीदकर पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण करवाया। सन् १९१९ में उन्होंने उपवन सहित यह मन्दिर समाज को सौंप दिया। तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठ धनी दयानन्द सरावगी ने वर्तमान मन्दिर का निर्माण करवाया। दिगम्बर जैन समाज ने बहुत धन व्यय कर इस स्थान को रमणीक बनवाया है। बहुत दर्शनार्थी इस मन्दिर को देखने आते हैं।

नया मन्दिर : यह मन्दिर ८३ नं० रवीन्द्र सरणी में अवस्थित है। इस मन्दिर का निर्माण काल सन् १९०४ या १९०५ है। इस मन्दिर के निर्माण में अग्रणी थे हरकिशन दास जी सरावगी। यद्यपि बाहर से देखने में यह मन्दिर-सा नहीं लगता किन्तु इसके भीतर सुन्दर प्रस्तर कार्य है। बाहरी भाग के पुनर्निर्माण की परिकल्पना है। यहाँ भगवान चन्द्रप्रभ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

उपरोक्त मन्दिर के अतिरिक्त दिगम्बर समाज के जो गृह मन्दिर हैं वे इस प्रकार हैं :

१) २१ नं० हंसपुकुर फर्स्ट लेन में तीन तल्ले पर भगवानदास जैन का गृह मन्दिर है। यहाँ मुख्य प्रतिमा भगवान नेमिनाथ की है।

२) ४ नं० शेक्सपियर सरणी में श्री गजराज जी सरावगी के यहाँ गृह मन्दिर है। यहाँ संगमरमर का मन्दिर और छोटा उद्यान है।

३) १ नं० अलीपुर पार्क स्थित साहू निलय में साहू शान्तिप्रसादजी जैन के निजी परिवार के लिए यह मन्दिर बनवाया गया। यह गृह मन्दिर सुन्दर उद्यान में अवस्थित है। इसकी छत भी काँच की है।

४) जैन कुंज, हाईड रोड, खिदिरपुर में श्री बैजनाथ सरावगी एवं उनके कारखाने के कर्मचारियों के लिए इस गृह-मन्दिर का निर्माण करवाया गया।

५) ५ नं० बड़तल्ला स्ट्रीट में विसाउ निवासी अर्जुनदासजी घनश्याम दासजी सरावगी द्वारा एक गृह मन्दिर बनवाया गया। मन्दिर सहित यह मकान उन्होंने सरावगी बालिका विद्यालय को दान कर दिया।

कलकत्ते के निकटवर्ती स्थानों के दिगम्बर जैन मन्दिरों के मध्य १ नं० जटिया रोड स्थित वाली का मन्दिर, ४२ ग्रान्ड ट्रंक रोड स्थित उत्तर पाड़ा का मन्दिर, योगी पाड़ा स्थित चुंचुड़ा का मन्दिर भी उल्लेखनीय है।

श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर, कलकत्ता सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रन्थ के आधार पर।

कुमारपाल देव

[गुजरात कहानी]

सिद्धराज जयसिंह के समान राजा गुजरात में बहुत कम हुए हैं। समस्त देश में उनकी जैसी ख्याति थी वैसा ही था उनका राज्य शासन। किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी राजा का मन था अशान्त। अशान्त इसलिए कि उनके कोई सन्तान नहीं थी। उन्हें निरन्तर यही चिन्ता रहती थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य-सिंहासन पर कौन बैठेगा?

आखिर एक दिन उन्होंने इस विषय में ज्योतिषियों से पूछा। उन्होंने कहा—'महाराज, आपकी मृत्यु के पश्चात् गुजरात के सिंहासन पर आरोहित होने का योग त्रिभुवन पाल देव के पुत्र कुमार पाल का पड़ता है।'

यह सुनते ही जयसिंह का मुख क्रोध से लाल हो गया। तो क्या उसकी मृत्यु के पश्चात् गुजरात के सिंहासन पर आरूढ़ होगा हीनकुल उत्पन्न कुमार पाल? हीनकुल ही तो था। क्योंकि हरिपाल देव गुजरात नरेश भीमदेव का पुत्र होने पर भी एक गणिका से उत्पन्न था। इसी हरिपाल का पुत्र था त्रिभुवन पाल जो कि कुमार पाल का पिता था। नहीं वह ऐसा नहीं होने देगा। यदि कुमार पाल जीवित ही नहीं रहा तो सिंहासन पर बैठेगा कैसे? अच्छा होगा यदि इसके पूर्व ही उसकी हत्या करवा दी जाए। तभी से जयसिंह कुमारपाल की हत्या का सुयोग खोजने लगे।

कुमारपाल थे देथलिपति त्रिभुवन पाल के पुत्र। उनकी स्त्री का नाम था भोपाल दे। कुमारपाल के दो भाई एवं दो बहनें थीं। भाइयों के नाम थे महीपाल और कीर्तिपाल, बहनों का प्रमीला और देवल देवी। प्रमीला का विवाह सिद्धराज जयसिंह के ही एक सामन्त कान्हड़देव के साथ एवं देवल देवी का सांभर के राजा अर्णोराज के साथ हुआ था।

कुमारपाल को जब यह ज्ञात हुआ कि सिद्धराज उस पर रुष्ट हैं, वे उसकी हत्या के सुयोग में हैं तो वे देश छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की सोचने लगे। किन्तु जाऊँगा-जाऊँगा करने पर भी जा नहीं पाए। तभी हठात् एक दिन सुना कि जयसिंह के सैनिकों ने उसके पिता की हत्या कर दी है।

यह सम्वाद सुनते ही कुमारपाल समझ गए बस अब उनकी बारी है। राज्य नहीं छोड़ने पर मृत्यु निश्चित है। अतः एक मुहूर्त भी नष्ट न कर

सन्यासी के वेष में गहन रात्रि के समय वे घर से निकल पड़े। तदुपरान्त प्रारम्भ हुआ उनका यायावर जीवन। आज यहाँ तो कल वहाँ। जहाँ जो कुछ जुट पाता खा लेते नहीं तो उपवास ही हो जाता। सन्यासियों की तरह ही बड़ी-बड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और तन पर था जीर्ण-शीर्ण गेरूआ वस्त्र। अतः आसानी से उन्हें कोई पहचान ही नहीं सकता था। इसी प्रकार भटकते हुए एक दिन पाटन पहुँचे। वहाँ के एक मन्दिर में पुजारी का कार्य करने लगे।

लेकिन यहाँ भी शान्तिपूर्वक नहीं रह पाए। जयसिंह ने अपने पिता कर्णदेव के श्राद्धोपलक्ष में सभी साधुओं, ब्राह्मणों एवं पुजारियों को आमन्त्रित किया। राज्य निमन्त्रण अमान्य नहीं किया जा सकता था। अतः उन्हें अन्य पुजारियों के साथ जाना पड़ा। शायद इसके पीछे सिद्धराज का कोई षड़यन्त्र था। क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि कुमारपाल सन्यासी के वेष में छिपता फिर रहा है। तभी तो उन्होंने केवल उनलोगों को आमंत्रित ही नहीं किया स्वयं खड़े रहकर उनके पैर भी धो रहे थे। इसी भाँति पाँव धोते हुए कुमारपाल के राजोचित कोमल उर्द्धरेखादि से सम्पन्न पाँव जयसिंह की दृष्टि में पड़े। अपलक उन पैरों को देखते ही रह गए। किन्तु कुमारपाल भी क्षण भर में उनके मनोभावों को ताड़कर तुरन्त सन्यासियों के दल में मिश्रित होकर जिधर से राह मिली उधर से ही भाग निकले। न उनके पाँव में जूता था न सिर पर पगड़ी। मस्तक पर थी ग्रीष्म की प्रखर धूप, पैरों तले थी जलती हुई गर्म बालू। फिर भी बिना एक पल रुके, विश्राम किए, चलते रहे न जाने कब जयसिंह के अनुचर उन्हें पकड़ लें। उधर जयसिंह भी चुप नहीं बैठे थे। उन्होंने भी अपने घुड़सवार उनके पीछे दौड़ा दिए थे। चाहे जैसे भी हो उस दाढ़ी वाले पुजारी को पकड़ कर लाना ही होगा।

बेचारे कुमारपाल दो कोस भी नहीं चल पाए कि घोड़े की खुर-ध्वनि सुनायी पड़ी। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि वे उन्हें ही पकड़ने आ रहे हैं। अब नंगे पावों दौड़ते हुए रक्षा पाना असम्भव था। आवश्यक था किसी गुप्त स्थान में छिप जाना किन्तु ऐसा स्थान कहीं दृष्टिगत ही नहीं हो रहा था। तभी अचानक देखा कुछ दूरी पर खेत के चारों ओर बाड़ लगाने के लिए एक कृषक ने वृक्ष की कटीली डालियाँ एक जगह एकत्रित कर रखी हैं। समय गंवाना व्यर्थ समझ वे तुरन्त उसी ओर दौड़कर गये और उसको समस्त परिस्थिति अवगत कराई एवं प्राण रक्षा की याचना की। उसको भी उन पर दया आ गयी। अतः उसने उन कटीली झाड़ियों के मध्य उन्हें

बैठाकर चारों ओर से उस ढेर को इतना सघन कर दिया कि इसके भीतर कोई है यह जानना कठिन हो गया।

कुछ देर पश्चात् ही कुमारपाल के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए वे घुड़सवार वहाँ पहुँचे। उन्होंने कृषक से कुमारपाल के विषय में पूछा—'इधर से किसी को जाते देखा है?' कृषक का नाम भीम था। उसने तुरन्त जवाब दिया—'नहीं, किसी को नहीं देखा है।' उन घुड़सवारों ने चारों ओर दृष्टि डाली। उन कटीली झाड़ियों के ढेर के नीचे मनुष्य का रहना सम्भव नहीं समझते हुए भी उन्होंने कई बार अपने बरछे को उसमें घुसा कर देखा और लौट गए। क्योंकि आगे उसके पदचिह्न न होने के कारण जाना ही व्यर्थ था।

वह पूरा दिन कुमारपाल को काँटों के ढेर के नीचे छिपे हुए ही बिताना पड़ा। रात के समय उस कृषक ने उन्हें बाहर निकाला। कुमारपाल की समस्त देह काँटों से क्षत-विक्षत हो गयी थी, वेदना भी कम नहीं थी। फिर भी वहाँ रहना उचित नहीं था। अतः भोर होते ही वे वहाँ से चल पड़े। किन्तु अधिक दूर नहीं जा पाए। कल से पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं पड़ा था। शरीर में थी भयंकर व्यथा। आखिर एक वृक्ष तले विश्राम के लिए बैठे। तभी वहाँ एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा। एक चूहा वृक्ष के नीचे की गर्त से एक-एक मोहर लाता गया और कुमार पाल के सामने सजाता गया। इस प्रकार वह इक्कीस मोहरें लाया। तदुपरान्त फिर ज्योंही वह एक मोहर लेकर वापिस उस गर्त में घुसा कुमार पाल ने वहाँ पड़ी बीस मोहरें उठा ली। उस चूहे ने वापिस लौटकर जब वहाँ अन्य मोहरें नहीं पायीं तो सिर धुन-धुनकर वहीं मर गया। चूहे की मृत्यु देखकर कुमार पाल बड़े दुःखी हुए। सोचने लगे धन का मोह अन्य प्राणियों में भी है। किन्तु उन्हें उस समय धन की नितान्त आवश्यकता थी। अतः वे मोहरें लेकर आगे बढ़े पर उस दिन भी खाने को कुछ नहीं जुटा पाए।

तीसरे दिन कुमारपाल हारे-थके एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। अब तो उनमें खड़े होने की भी शक्ति नहीं थी। उसी समय श्री देवी नामक एक महिला ससुराल से पीहर जाने के लिए बैलगाड़ी में उसी पथ से गुजरी। कुमारपाल की अवस्था से द्रवीभूत होकर उसने अपने साथ लाया भोजन उन्हें खिलाया। भोजन करने के पश्चात् कुमारपाल ने कुछ स्वस्थता महसूस की। बोले—'बहन, तुम्हारा यह उपकार मैं जीवन भर कभी नहीं भूलूँगा।'

यहाँ से कुमारपाल अपने राज्य देथली स्व परिवार को देखने लौटे। किन्तु जयसिंह के अनुचर उनकी खबर रखते थे। अतः कुमारपाल के लौटते ही उन्होंने देथली को घेर लिया। बड़े कष्ट के पश्चात् उन्होंने अपने परिवार को

तो मालवा की ओर भेजा और स्वयं सज्जन नामक कुम्हार की सहायता से छद्म वेष धारण किए अँधेरी रात में वहाँ से भाग गए। बोसिरी में एक ब्राह्मण से उनकी मित्रता हुई। उसने उन्हें अपने घर में रखा और भिक्षा माँगकर उन्हें खिलाने लगा। लेकिन बोसिरी की यह सुविधा भी उनके भाग्य में अधिक दिनों तक न रह सकी। वहाँ से भी उन्हें प्राण-रक्षार्थ भागना पड़ा। इस भाँति अनेक कष्टों को सहते हुए कभी भूखे तो कभी प्यासे रहते हुए खम्भात पहुँचे।

खम्भात में उन दिनों प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र निवास कर रहे थे। उनके जैसा विद्वान पण्डित तो उस काल में क्या किसी भी काल में दुर्लभ था। कुमारपाल को देखने मात्र से ही वे समझ गए कि यही गुजरात का भावी सम्राट है। अतः उन्होंने खम्भात के मन्त्री उदयन को बुलाकर उन्हें आश्रय देने को कहा। उदयन ने उन्हें आश्रय तो दिया किन्तु अधिक दिन रख नहीं सका : जयसिंह के सैनिक वहाँ भी उपस्थित हो गए। अतः कुमारपाल को वहाँ से भी भागना पड़ा। उदयन ने उन्हें कुछ अर्थ दिया। उसी अर्थ को लेकर वे मालवा की ओर अग्रसर हुए। जाने के पूर्व वे हेमचन्द्राचार्य से मिले। उन्होंने बताया, 'अब आपके दुःख के दिन अधिक नहीं हैं। शीघ्र ही आप गुजरात राज्य प्राप्त करेंगे।' किन्तु कुमारपाल को अपनी परिस्थितियों के कारण उनके कथन पर विश्वास नहीं हुआ। तब हेमचन्द्राचार्य बोले—'आगामी कार्तिक मास की द्वितीया को हस्तानक्षत्र आने पर यदि आपको राज्य नहीं मिला तो मैं निमित्त देखना ही छोड़ दूँगा।' इस पर कुमारपाल ने कहा—'यदि आपका वचन सत्य निकला तो राज्य आपका ही होगा मैं तो आपका सेवक बनकर रहूँगा।'

मालवा पहुँचते ही कुमारपाल को खबर मिली कि सिद्धराज जयसिंह मृत्यु-शय्या पर हैं। उन्होंने आचार्य का कथन स्मरण कर तुरन्त् सपरिवार गुजरात को प्रयाण किया।

उधर मृत्युशैय्या पर पड़े जयसिंह मन्त्री उदयन के पुत्र वाहड़ को इसलिए दत्तक पुत्र बनाना चाह रहे थे ताकि कुमारपाल राजा न बन सकें। तभी हठात् उनकी मृत्यु हो गयी। यह सम्वाद मिलते ही कुमारपाल पाटन आए। वहाँ वे अपने बहनोई कान्हड़देव से मिले। कान्हड़देव उन्हें संग लिए राज सभा में उपस्थित हुए। कुमारपाल की योग्यता किसी से छिपी नहीं थी। अतः सहज ही सबों ने एक स्वर से उन्हें सिंहासनारूढ़ करने की स्वीकृति प्रदान की। कान्हड़देव ही वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने कुमारपाल को सम्राट के रूप में भूमि स्पर्श पूर्वक प्रणाम किया। आखिर हेमचन्द्राचार्य की भविष्यवाणी सत्य निकली।

कुमारपाल जिस समय गुजरात के सिंहासन पर बैठे उस समय उनकी उम्र पचास वर्ष की थी। [मेरुतुंगाचार्य की 'प्रबन्ध चिन्तामणि के आधार से

श्रीपाल

[पूर्वानुवृत्ति]

चतुर्थ-दृश्य

[महारानी का कक्ष। श्रीपाल एक ओर सोया हुआ है। महारानी उसे नींद दिला रही हैं। उसी समय मन्त्री उनके कक्ष में प्रवेश करते हैं]

मतिसागर : असमय में आपके कक्ष में प्रवेश कर आपकी शान्ति भंग की इसके लिए क्षमा करें महारानी। क्योंकि एक क्षण भी विलम्ब करने का समय नहीं। सम्मुख है घोर विपद....

कमल प्रभा : क्या कहा? घोर विपद? हृदय धड़कने लगा है मन्त्रीवर, आपके इस कथन को सुनकर। कल सुबह श्रीपाल का राज्याभिषेक है। प्रजागण उसी आनन्द में निमग्न है। ऐसे समय में आप कौन-सी घोर विपद की खबर लाये हैं?

मतिसागर : कुमार श्रीपाल पर आने वाली घोर विपद की खबर लाया हूँ महारानी। आपको इसी क्षण श्रीपाल के साथ राजप्रासाद का परित्याग करना होगा।

कमल प्रभा : क्या कह रहे हैं मन्त्रीवर आप? कल सुबह श्रीपाल का राज्याभिषेक होगा। और अभी मुझे राजप्रासाद का परित्याग करना होगा। कुछ समझ ही नहीं पा रही हूँ मैं!

मतिसागर : कल सुबह श्रीपाल का नहीं अजितसेन का राज्याभिषेक होगा। उसके पूर्व ही वह श्रीपाल को...

कमल प्रभा : किन्तु, उनके प्रासाद में भी तो श्रीपाल के राज्याभिषेक के लिए आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है!

मतिसागर : वह तो केवल प्रजा को भ्रम में डालने के लिए है। जबकि भीतर ही भीतर एक विराट् षड़यन्त्र चल रहा है। मुझे गुप्तचरों से सबकुछ ज्ञात हुआ है। वह आज रात आपके महल में प्रवेश कर श्रीपाल की हत्या करेगा।

कमल प्रभा : नहीं नहीं मन्त्रीवर! ऐसा कैसे हो सकता है? हमारा अपना सैन्यदल है, प्रासाद रक्षी सेना भी है।

मतिसागर : अब अपना कुछ नहीं है महारानी। यदि ऐसा ही होता तो मतिसागर असमय में आपके कक्ष में नहीं आता। उसने उत्कोच देकर सेनापति कीर्तिपाल और प्रासाद रक्षी सेना नायक महेन्द्र वर्मा को अपनी ओर कर लिया है। कोई भी श्रीपाल की रक्षा के लिए अस्त्र धारण नहीं करेगा। इतना ही नहीं महारानी, उसने तो मतिसागर को भी वशीभूत करना चाहा था। किन्तु मतिसागर कृतघ्न पामर नहीं है। अब कृपया विलम्ब न करें। सुप्त कुमार को लेकर आप इसी क्षण प्रासाद का परित्याग करें। आपको आज रात्रि में ही राजधानी से बहुत दूर चला जाना होगा। अजित सेन ने मुझे भी बन्दी बनाने का आदेश दिया है।

कमल प्रभा : पर मैं अकेली इतनी रात कुमार को साथ ले कैसे प्रासाद परित्याग करूँ ? द्वारपाल जब, सब अजितसेन के अधीन हो गए हैं तो क्या वे मुझे रोकेंगे नहीं ?

मतिसागर : इसका उपाय भी मैंने सोच लिया है महारानी। उद्यान के पुष्प-वाटिका से एक सुरंग राजधानी के सीमान्तवर्ती अरण्य में जाकर शेष होती है। उस सुरंग का सन्धान मेरे और महाराज के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। उसी सुरंग पथ से आपको जाना होगा।

कमल प्रभा : फिर उसके बाद ?

मतिसागर : उसके बाद की चिन्ता करने का समय अभी नहीं है। ईश्वर पर भरोसा रखें। किन्तु अभी यदि आपने देर कर दी तो श्रीपाल को नहीं बचाया जा सकेगा।

[महारानी श्रीपाल को गोद में ले लेती है]

कमल प्रभा : मैं प्रस्तुत हूँ मन्त्रीवर।

[मन्त्री उन्हें मार्ग दिखाते हुए ले जाते हैं]

मतिसागर : इधर आइए महारानी, इधर।

[महारानी और मन्त्री के स्थान परित्याग के कुछ क्षणों पश्चात् ही दूसरी राह से अजितसेन हाथ में नग्न तलवार लिए प्रासाद में प्रवेश करता है]

अजित सेन : महारानी कहाँ है ? कहाँ है श्रीपाल ? कंचुकी !—

[कंचुकी का प्रवेश]

अजितसेन : महारानी कहाँ हैं ?

कंचुकी : महारानी कुमार को लेकर उत्सव देखने के लिए आस्थान मण्डप की ओर गयीं हैं।

अजितसेन : आस्थान मण्डप ?

[शीघ्रता पूर्वक निकल जाता है]

पंचम दृश्य

[अरण्य का सीमान्तवर्ती प्रदेश। कुछ दूरी पर कुष्ठरोगाक्रान्त व्यक्तियों का एक विराट् दल। सामने के एक वृक्ष तले खड़े होकर दो कुष्ठरोगी परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं]

मंगल : खा-पीकर आराम तो बहुत कर चुके। अब आगे बढ़ना चाहिए। क्यों, क्या कहते हो दलपति ? काश, सन्ध्या के पूर्व ही यदि पृष्ठ चम्पा पहुँच पाते।

सुजन : और नहीं पहुँच पाए तो भी क्या ? हमलोग कोई राज्य जय करने तो जा नहीं रहे हैं, ना ही हम तीर्थ यात्री हैं कि अमुक समय वहाँ पहुँचना ही होगा। हमारा तो पथ ही घर है अतः यदि आज यहीं रह गए तो भी क्या ? देख रहे हो शरद् ऋतु की यह धूप ? कैसी मीठी है। मुझे तो कुछ आलस-सा लग रहा है।

मंगल : तुम्हें समझ पाना मुश्किल है सुजन। तुम बहुत ही विचित्र हो।

सुजन : सोच रहा हूँ अब तुम्हें दलपति बना दूँ।

मंगल : ना भाई ना। दलपति होना भी एक झंझट है। वह सब मेरे वश का नहीं। मैं तो जैसा हूँ बस ठीक हूँ। तुम जो काम करने को कहोगे वही करूँगा। सोचने की चिन्ताओं में मैं क्यों पड़ूँ ?

सुजन : पद के लिए। पद के लिए ही तो अजित सेन अपने छोटे से भतीजे को मारने गया था। क्या पता तुम भी कभी मुझे मार-कर दलपति बनना चाहो।

मंगल : [सुजन के पैरों को छूकर] क्या कह रहे हो तुम ? पद के लिए तुम्हें मारूँगा। ऐसा करने के पूर्व ही मैं आत्महत्या कर लूँगा। मेरे लिए तुमने क्या नहीं किया है ?

सुजन : अरे, वह सब कौन सोचता है । पद का मोह बहुत भीषण होता है । मनुष्य उपकार भूल जाता है····किन्तु, कहना होगा रानी बड़ी बुद्धिमती है । अजितसेन रात्रि में श्रीपाल को मारने गया था—पर वह इसके पूर्व ही कहीं भाग गयी कोई जान नहीं पाया । सोचता हूँ रानी को यदि अजितसेन के लोग पुत्र सहित पकड़ लेंगे तो कैसा अनर्थ होगा ?

मंगल : भगवान न करे ऐसा हो । देखो तो वह दूर से कौन इसी ओर आ रहा है ? कोई औरत ही लगती है । गोद में लड़का है । कहीं रानी तो नहीं है ?

सुजन : यदि है तो अच्छा ही है । हम उन्हें आश्रय देंगे ।

[श्रीपाल को गोद में लिए रानी आती है । किन्तु उन्हें देखकर भी अनदेखा करती हुई आगे बढ़ जाती है]

सुजन : [सम्मुख आकर] सुनो बहन ! तुम किसी भले घर की औरत लगती हो । फिर क्यों बच्चे को गोद में लिए पैदल हो इस वन-पथ से जा रही हो ?

कमल प्रभा : यह सब बड़े दुःख की बात है भाई । क्या करोगे तुम यह सब सुनकर ?

सुजन : तुम्हारी सहायता कर सकते हैं ।

मंगल : हाँ हाँ सहायता तो कर ही सकते हैं ।

कमल प्रभा : मैं ऐसी दुःखिनी हूँ कि तुमलोग मेरी सहायता नहीं कर सकोगे ।

सुजन : तब क्या तुम चम्पा देश की रानी हो ?

कमल प्रभा : [चमक कर] तुमलोगों से किसने कहा यह सब ?

सुजन : कहेगा कौन ? तुम्हारा चाल-चलन देखकर ही समझ गए । हमलोग चम्पा से ही आ रहे हैं । वहीं सुना कि रानी अपने पुत्र को लेकर भाग गयी हैं और मन्त्री भी । रानी को पकड़ने के लिए राजा अजितसेन ने चारों ओर लोग भेजे हैं ।

कमल प्रभा : अच्छा ? तो क्या तुमलोग भी उसी के लोग हो ?

सुजन : ना बाबा ना, हमलोग क्यों उसके लोग बनेंगे ? किन्तु तुम्हारा इस प्रकार एकाकी पथ चलना उचित नहीं होगा । तुम्हें पकड़ते

ही वे लोग मार डालेंगे। अतः तुम हमारे दल में सम्मिलित हो जाओ। हमलोगों के मध्य से तुम्हें पकड़ने का सामर्थ्य किसमें है ?

कमल प्रभा : तुम्हारे दल में ?

सुजन : हाँ, हाँ हमारे दल में। हमलोग सात सौ कुष्ठ रोगी हैं। एक साथ घूमते-फिरते हैं। मैं उनका दलपति हूँ।

कमल प्रभा : किन्तु····

सुजन : किन्तु का अब समय नहीं है। वो देखो, घोड़े के पावों की धूल उड़ती दिखाई दे रही है। लगता है तुम्हें खोजते हुए अजित-सेन के लोग ही इधर आ रहे हैं। मंगल सिंह, तुम इन्हें हमारे दल में छुपा दो।

मंगल : आओ बहन, शीघ्र आओ।

[आगे-आगे मंगल जाता है। पीछे-पीछे श्रीपाल को गोद में लिए रानी कमल प्रभा भी जाती हैं। तभी दो सैनिक आते हैं। सुजेन के निकट आकर एक सैनिक उससे पूछता है]

प्रथम सैनिक : क्या तुमने गोद में बच्चे को लिए एक स्त्री को इधर से जाते देखा है ?

सुजन : नहीं।

प्रथम सैनिक : नहीं कैसे ? सच-सच बताओ। हमलोग राजा के आदमी हैं।

सुजन : सच ही तो कह रहा हूँ। इस जंगल में भला कोई स्त्री अकेली जाएगी ? किसमें है इतना साहस ?

प्रथम सैनिक : साहस की बात छोड़ो। जो पूछता हूँ उसका जवाब दो।

सुजन : दे तो दिया जवाब। किसी को नहीं देखा।

प्रथम सैनिक : मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। वे, उधर कौन हैं।

सुजन : हमारे दल के लोग हैं।

प्रथम सैनिक : तुम्हारे दल के लोग ? कौन हो तुमलोग ?

सुजन : हम सब कुष्ठ रोगी हैं। आश्रय के अभाव में दल बाँधकर घूमते-फिरते हैं। आज यहाँ तो कल वहाँ।

प्रथम सैनिक : तुम्हारी बातों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है, मैं तलाशी लूँगा।

सुजन : तो लीजिए। किन्तु तलाशी लेने के समय छुआ-छूई करने से यह रोग आपलोगों को भी हो जाएगा।

द्वितीय सैनिक : यह ठीक कहता है। उनकी तलाशी लेने की आवश्यकता ही क्या है? चलो यहीं से लौट चलें।

प्रथम सैनिक : पर····यदि महारानी को पकड़वाते तो पुरस्कार मिलता।

द्वितीय सैनिक : छोड़ो तुम्हारा पुरस्कार। तलाशी लेकर क्या कुष्ठ रोगी बनना है? जरूरत नहीं है ऐसे पुरस्कार की। चलो चलें।

प्रथम सैनिक : क्यों रे सच कहता है तो ?

सुजन : जी हजूर।

प्रथम सैनिक : [द्वितीय सैनिक से] चलो तब लौट चलें।

[क्रमशः

जैन विज्ञान

—डा० हरिसत्य भट्टाचार्य

जैन सम्प्रदाय विशाल भारतीय जाति का एक अंश है। भारतवर्ष की जो प्राचीन संस्कृति आज पुरातत्व शास्त्रियों को चकित कर रही है उस संस्कृति का पूरा और सच्चा इतिहास, जैन सम्प्रदाय का अनुशीलन किए बिना नहीं जाना जा सकता ; जैन सम्प्रदाय के विवरण के बिना वह अपूर्ण रहता है।

कुछ लोग भूल से यह समझ लेते हैं कि जैन धर्म का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम महावीर स्वामी ने किया है, अर्थात् उनका मत है कि जैन धर्म का जन्म ईस्वी सन् छठी या सातवीं शताब्दी में हुआ है। जेकोबी जैसे समर्थ विद्वानों ने यह भ्रम निवारण करने का खूब प्रयत्न किया है और उनका यह प्रयत्न अधिकांश में सफल हुआ है।

जैन धर्म इस संसार का प्राचीन से प्राचीन धर्म है। भागवतकार ने जिस ऋषभदेव को विष्णु का मुख्य—आदि अवतार माना है वही जैन सम्प्रदाय का आदि ईश्वर, वर्तमान चौबीसी में प्रथम तीर्थङ्कर हैं।

पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष जिस पुरुष श्रेष्ठ के नाम से आज भी गौरवान्वित है, जिस महापुरुष के नाम पर प्रत्येक भारतवासी को अभिमान है उस चक्रवर्ती सम्राट भरत को ब्राह्मण सम्प्रदाय और जैन सम्प्रदाय दोनों ही भक्ति भाव से वन्दन करते हैं।

जिस रघुपति के चरित्र चित्रण से ब्राह्मण साहित्य जगमगा रहा है उस रामचन्द्र को भी जैन समाज ने अपने अन्दर स्वीकार किया है। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण और उनके ज्येष्ठ बन्धु को भी जैन साहित्य में अच्छा स्थान मिला है। उनके एक आत्मीय श्री नेमिनाथ को तो जैन धर्म के २२ वें तीर्थङ्कर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। गौतम बुद्ध के जन्म से २५० वर्ष पहले जैन धर्म के २३ वें तीर्थङ्कर भगवान श्री पार्श्वनाथ का शासन वर्तमान था। इन सब बातों का ऐतिहासिक मूल्य चाहे जो हो, परन्तु यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि भगवान् महावीर स्वामी के आविर्भाव से पहले भी भारतवर्ष में जैन धर्म का प्रभाव था। बौद्ध धर्म के प्राचीनातिप्राचीन ग्रन्थों में जो "नायपुत्त" और "निग्गंथ" के नाम मिलते हैं वे बुद्ध भगवान के पहले के थे इसमें तनिक भी सन्देह को स्थान नहीं है। जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा तो है ही नहीं, इतना

ही नहीं वह बौद्ध धर्म से अत्यन्त प्राचीन है। अतएव हम यहाँ पुनः कहना चाहते हैं कि भारतीय दर्शन, भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के इतिहास में जैन धर्म को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती स्पष्ट अथवा अस्पष्ट बातों को तो जाने दीजिए। इतिहास के प्रभात काल से जैन महापुरुषों का गौरव भगवान अंशुमाली की किरणों के सामान पृथ्वी पर देदीप्यमान होता लगता है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि भारत का चक्रवर्ती सम्राट मौर्य कुल मुकुटमणि चन्द्रगुप्त जैन धर्म का अनुरागी था। प्राचीन से प्राचीन वैयाकरण शाकटायन अथवा जैनेन्द्र का नाम व्याकरण का कौन विद्यार्थी नहीं जानता? महाराज विक्रमादित्य की राज्य सभा के नवरत्नों में एक रत्न जैन धर्मावलम्बी था ऐसा अनुमान हो सकता है। अभिधान प्रणेताओं में श्री हेमचन्द्राचार्य का स्थान बहुत ऊँचा है। दर्शन शास्त्र में, गणित में, ज्योतिष में, वैद्यक में, काव्य में और नीतिशास्त्र आदि में जैन पण्डितों ने जो भाग लिया है—नये नये तथ्य प्रकट किये हैं—इनकी गणना करना सहज कार्य नहीं है।

यूरोप के मध्यकालीन लोक-साहित्य का मूल भारतवर्ष है और भारतवर्ष में सर्वप्रथम लोक-साहित्य की रचना जैन पण्डितों की है। जैन त्यागी पुरुष महान् लोक-शिक्षक थे।

शिल्प और स्थापत्य में भी जैन अग्रगण्य थे। कोई भी तीर्थ इस बात की साक्षी दे सकता है। एलोरा जैसे स्थानों में आज भी जैनों की कला करामत के भग्नावशेष देखे जा सकते हैं। आबू और शत्रुंजय के मन्दिर किस कला प्रेमी को मुग्ध नहीं करते? आज भी दक्षिण में गोमटेश्वर की मूर्त्ति काल की क्रूरता का हास्य करती हुई प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में 'इम्पीरीयल गेजीटीयर ऑफ इण्डिया' में लिखा है—"These colossal monolithic" nude Jain statues....are among the wonders of the world....' जगत में यह एक आश्चर्य है।

इसके अतिरिक्त विधर्मियों के युग-युगव्यापी अत्याचारों, परिवर्तनों, अग्नि और भूकम्प के उपद्रवों से बचे हुए जो नमूने आज मिलते हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि उच्च सभ्यता के लगभग सभी क्षेत्रों में जैनों ने उन्नति की थी।

जैन समाज के धारावाही इतिहास पर प्रकाश डालने की मुझमें शक्ति नहीं है। जैन विचार प्रवाह की समस्त तरंगों का दिग्दर्शन कराना भी असम्भव प्रायः है। मैं यहाँ केवल जैन दर्शन और विज्ञान का संक्षिप्त विवरण ही उपस्थित करना चाहता हूँ।

जैन सिद्धान्तानुसार जगत में मुख्य दो तत्व हैं : जीव और अजीव। जीव का अर्थ है आत्मा और जीव से जो भिन्न वह अजीव कहलाता है।

विज्ञान—जड़ विज्ञान

जड़ विज्ञान की हस्ती अजीव पदार्थ के आश्रित ही है। किसी को यह न समझ लेना चाहिए कि वेदान्त जिसे 'माया' कहता है वही अजीव पदार्थ है। माया की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है ; ब्रह्म के बिना वह बेकार है। परन्तु यह अजीव तत्व तो जीव तत्व के समान ही स्वाधीन, स्वतन्त्र, अनादि और अनन्त है। अजीव को सांख्य कथित प्रकृति भी न मान बैठना चाहिए। प्रकृति यद्यपि स्वाधीन, स्वतन्त्र, अनादि, अनन्त है तथापि वह एक है ; अजीव तत्व अनेक हैं। न्याय तथा वैशेषिक दर्शन सम्मत अणु और परमाणु भी जैन सिद्धान्त वाला अजीव तत्व से भिन्न है क्योंकि अणु-परमाणु के अतिरिक्त अजीव तत्व के बहुत से भेद हैं। बौद्धों के "शून्य" में भी यह अजीव तत्व नहीं समा पाता। जैन मतानुसार अजीव के पाँच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पुद्गल

जिसे अंग्रेजी में मेटर (Matter) कहते हैं वही जैन दर्शन में पुद्गल नाम से कथित है, यह कहा जाए तो अनुचित न होगा। पुद्गल का स्वरूप है। रूप, रस, स्पर्श और गन्ध ये पुद्गल के चार गुण हैं। पुद्गल की संख्या अनन्त है। शब्द, बन्ध (मिलन), सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, भेद, अंधकार, छाया, आलोक और ताप—ये पुद्गल के पर्याय हैं, अर्थात् पुद्गल से इनकी उत्पत्ति होती है। शब्द, आलोक (प्रकाश) और ताप को पौद्गलिक मानने में जैनों ने कुछ अंशों में वर्तमान वैज्ञानिक खोज से समता प्रदर्शित की है। अन्धकार और छाया को न्याय दर्शन पौद्गलिक नहीं मानता। वह तो इन्हें अभाव मात्र ही मानता है।

धर्म

धर्म का अर्थ साधारणतः पुण्यकर्म समझा जाता है, परन्तु जैन दर्शन इसका यहाँ भिन्न अर्थ करता है। जैन मतानुसार इसका अर्थ Principle of Motion से मिलता-जुलता ही है। जिस प्रकार मछलियों की गति में पानी सहायता देता है उसे जैन विज्ञान 'धर्मतत्व' के नाम से पुकारता है। धर्म अमूर्त है, निष्क्रिय है और नित्य है। वह (धर्म) जीव और पुद्गल को गति नहीं देता—केवल उनकी गति में सहायक होता है।

अधर्म

अधर्म का अर्थ पाप-कर्म न समझना चाहिए। जैन दर्शन यहाँ इसका अर्थ Principle of Rest से मिलता-जुलता करता है। रास्ता भूल जाने पर मुसाफिर जिस प्रकार गाढ़ अन्धकार फैला हुआ देखकर रात को किसी जगह विश्राम करता है उसी प्रकार यह अधर्म अजीव तत्व पुद्‌गल और जीव को स्थित रहने में सहायता देता है। धर्म के समान अधर्म भी अमूर्त, निष्क्रिय और नित्य है। वह जीव और पुद्‌गल की गति को नहीं रोकता—केवल उनकी स्थिति में सहायता करता है।

आकाश

जो अजीव तत्व जीव आदि पदार्थों को अवकाश देता है अर्थात् जिस अजीव तत्व के भीतर जीवादि पदार्थ रह सकते हैं उसे आकाश कहते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे Space कहते हैं। आकाश नित्य और व्यापक है एवं जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म तथा काल का आश्रयभूत है। जैन इस आकाश के दो भेद करते हैं—(१) लोकाकाश, (२) अलोकाकाश। लोकाकाश में ही जीवादि आश्रय प्राप्त करते हैं। लोकाकाश के बाहर अनन्त शून्यमय अलोक है।

काल

काल का अर्थ Time है। पदार्थ के परिवर्तन में जो अजीव तत्व सहायता करता है उसका नाम काल है। यह नित्य है और अमूर्त है। उस असंख्य द्रव्य से लोकाकाश परिपूर्ण है।

पुद्‌गलादि पाँच तत्व की इतनी आलोचना से ही कोई भी समझ सकता है कि वर्तमान जड़ विज्ञान के मूल तत्व जैन दर्शन में छुपे हुए हैं : प्राचीन ग्रीस के Democritus से लेकर वर्तमान युग के Boscovitch तक के सभी वैज्ञानिकों ने Atom पुद्‌गल के अस्तित्व को स्वीकार किया है। ये Atom अनन्त हैं, यह बात भी वे सब मानते हैं। वे इस विषय में भी एकमत हैं कि इनके संयोग-वियोग के कारण ही जड़ जगत के स्थूल पदार्थ उत्पन्न होते हैं और लय को प्राप्त होते हैं।

प्रथम Parmenides, Zeno आदि दार्शनिक धर्म अथवा Principle of Motion को स्वीकार नहीं करते थे, परन्तु बाद में न्यूटन आदि विद्वानों ने गतितत्व के सिद्धान्त की स्थापना की है। ग्रीस के Heraclitus आदि दार्शनिक अधर्म-तत्व मानने से इन्कार करते थे, परन्तु बाद में Perfect

Eqilibrium में अधर्म तत्व—नामान्तर से ही सही—स्वीकार कर लिया गया। केंट और हेगल आकाश तत्व को एक मानसिक व्यापार कहकर बिल्कुल ही उड़ा देना चाहते थे। परन्तु उसके बाद रसेल जैसे आधुनिक दार्शनिकों ने Space (आकाश) की तात्विकता को स्वीकार कर लिया। आकाश एक सत् एवं सत्य पदार्थ है इस बात को अधिकांश में Einstein भी मानता है। आकाश के समान ही काल को भी एक मनोव्यापार कहकर कुछ लोगों ने उड़ा देने की कोशिश की थी, परन्तु फ्रांस का एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक Bergson तो यहाँ तक कहता है कि काल वास्तव में एक Dynamic Reality है। काल के प्रबल अस्तित्व को स्वीकार किए बिना काम ही नहीं चल सकता।

उपरोक्त पांच प्रकार के अजीव पदार्थों के साथ जो तत्व कर्मवश जकड़ा हुआ है उसका नाम जीव है।

जीव

जैन दर्शन का जीव तत्व वेदान्त दर्शन के ब्रह्म से पृथक है। ब्रह्म एक और अद्वितीय है, परन्तु जीवों की संख्या अनन्त है। यह जीव तत्व सांख्य के पुरुष से भी भिन्न है, क्योंकि यह नित्यशुद्ध और नित्यमुक्त नहीं है, बल्कि बन्धनग्रस्त है। यह जीवतत्व न्याय और वैशेषिक दर्शन के आत्मा से भी भिन्न है, क्योंकि वह (जीवतत्व) जड़ नहीं है, साक्षात्कर्त्ता है। बौद्ध जिसे विज्ञान प्रवाह कहते हैं, जीवतत्व वह भी नहीं है, क्योंकि जीव सत्, सत्य और नित्य पदार्थ है। जैन दर्शन में जीव के अस्तित्व, चेतना, उपयोग, प्रभुत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, देह-परिमाणत्व और अमूर्तत्व आदि गुणों का वर्णन है।

प्राण-विद्या

प्राचीन जैनों ने जो जीव विचार का उपदेश किया है उसमें Biology विषयक आधुनिक खोज का पूर्वाभास भली-भाँति पाया जाता है। जैन पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में सूक्ष्म—एकेन्द्रिय जीवों का अस्तित्व मानते हैं। इस सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवपुञ्ज को आज वैज्ञानिक—प्राणितत्ववेत्ता Microscopic Organisms कहते हैं। जैन वनस्पतिकाय को एकेन्द्रिय जीव मानते हैं। वनस्पति में भी प्राण है, स्पर्श का अनुभव करने की शक्ति है यह भी वे कहते हैं। इस आधुनिक युग में आचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति शास्त्र सम्बन्धी जो नवीन अनुसन्धान करके आश्चर्य फैला दिया है उसका मूल वस्तुतः इस एकेन्द्रिय जीववाद में छुपा हुआ था।

आत्म-विद्या

जीवतत्व के समान ही जैन प्ररूपित आत्म-विद्या—Psychology में बहुत से आधुनिक अन्वेषणों का आभास पाया जाता है। जीव के गुणों की गणना में हमने 'चेतना' और 'उपयोग' का उल्लेख किया है। यहाँ इन मुख्य गुणों के विषय में विशेष विचार करना है।

चेतना

चेतना तीन तरह से होती है—कर्मफलानुभूति, कार्यानुभूति और ज्ञानानुभूति। स्थावर जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव केवल कर्मफल अनुभूति करते हैं। त्रस जीव—दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रियवाले जीव अपने कार्य का अनुभव करते हैं। उच्च प्रकार के जीव-ज्ञान के अधिकारी होते हैं। चेतना के इन तीन प्रकार अथवा पर्यायों को पूर्ण चैतन्य के क्रम विकास की तीन मंजिलें कहें तो अनुचित न होगा। जो लोग कहते हैं कि मनुष्य से भिन्न जीव केवल अचेतन यन्त्र के समान है उनका खण्डन जैनों ने हजारों वर्ष पहले किया है। आधुनिक युग में क्रमविकासमय मनोविज्ञान Evolutionary Psychology के जो दो मूल सूत्र माने जाते हैं वे पहले से ही जैन दर्शन में मौजूद थे। वे दो सूत्र ये हैं—(१) मनुष्य से भिन्न निकृष्ट कोटि के प्राणियों में एक प्रकार का बिल्कुल नीची कोटि का चैतन्य Sub-Human Consciousness होता है। इसी चैतन्य में से मानव चैतन्य का क्रमशः विकास होता है। (२) प्राण और चैतन्य Life and Consciousness सर्वथा सहगामी Co-extensive होते हैं।

उपयोग

जीव का दूसरा विशिष्ट लक्षण उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं: एक दर्शनोपयोग और दूसरा ज्ञानोपयोग।

दर्शन

रूपादि विशेष ज्ञान-वर्जित सामान्य की अनुभूति को दर्शन कहते हैं। दर्शन के चार भेद हैं—(१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधि दर्शन और (४) केवल दर्शन। चक्षु सम्बन्धी अनुभूति मात्र का नाम चक्षुदर्शन है। शब्द, रस, स्पर्श और गन्ध की अनुभूति को अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधि और केवल असाधारण दर्शन हैं। स्थूल इन्द्रियों से अगम्य विषय की अवधि वाली अनुभूति को अवधि दर्शन कहते हैं। Theosophist सम्प्रदाय जिसे

Clairvoyance कहते हैं, कुछ अंशों में अवधि दर्शन उसी के समान है । विश्व की समस्त वस्तुओं के अपरोक्ष अनुभव का नाम केवल दर्शन है ।

ज्ञान

दर्शन के पश्चात् ज्ञान के उदय को उपयोग का दूसरा भेद कहें तो कह सकते हैं । ज्ञान प्रथमतः दो प्रकार का है : एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष । मति, श्रुत आदि अष्टविध ज्ञान इन दो प्रकार के ज्ञान के अन्तर्गत आ जाता है । उनमें 'कुमति' मतिज्ञान का, 'कुश्रुत' श्रुतज्ञान का और 'विभंग' अवधि-ज्ञान का आभास अर्थात् Fallacious forms मात्र होता है ।

मति

दर्शन के पश्चात् इन्द्रिय ज्ञान की अपेक्षा से जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाम मतिज्ञान है । मतिज्ञान के तीन भेद हैं : उपलब्धि, भावना और उपयोग । इस तीन प्रकार के मतिज्ञान को जैन दार्शनिक बहुधा पाँच भेदों में विभक्त करते हैं—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध ।

(शुद्ध) मति

दर्शन के पश्चात् तुरन्त ही जो वृत्ति उत्पन्न होती है उसे उपलब्धि अथवा शुद्ध मतिज्ञान कहा जाता है । पाश्चात्य मनोविज्ञान इसे Sense Intuition अथवा Perception कहता है । जैन दार्शनिक मतिज्ञान के दो भेद करते हैं । जिस मतिज्ञान का आधार बाह्य इन्द्रियाँ हैं वह इन्द्रिय निमित्त मतिज्ञान ; और जो केवल अनिन्द्रिय है अर्थात् मन की अपेक्षा रखता है वह अनिन्द्रिय-निमित्त मतिज्ञान कहलाता है । दार्शनिक Locke ने Idea of Sensation और Idea of Reflection नामक जिन दो चित्तवृत्तियों का निरूपण किया है तथा आधुनिक दार्शनिक जिन्हें Extraspection (बहिरनुशीलन) और Introspection (अन्तरानुशीलन) द्वारा प्राप्त ज्ञान कहते हैं उन्हीं को जैन दार्शनिक क्रमशः इन्द्रिय निमित्त मतिज्ञान तथा अनिन्द्रिय निमित्त मतिज्ञान कहते हैं, ऐसा कह सकते हैं ।

कर्ण आदि पाँच इन्द्रियों के भेद से इन्द्रिय निमित्त मतिज्ञान भी पाँच प्रकार के हैं ।

जिस प्रकार वर्त्तमान युग के वैज्ञानिकों ने Perception में विभिन्न प्रकार की चित्तवृत्तियों का पता लगाया है, उसी प्रकार अति प्राचीन काल में

जैन पण्डितों ने मतिज्ञान में चार प्रकार की वृत्तियाँ मालूम की थीं। उन्होंने इन्हें अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा नाम से क्रमबद्ध किया है।

अवग्रह

अवग्रह बाह्य वस्तु के सामान्य आकार की पहचान कराता है। इस बाह्य वस्तु के स्वरूप का सुनिश्चित, सविशेष ज्ञान अवग्रह से नहीं प्राप्त होता। यह Sensation अथवा कुछ अंशों में Primum Cognitum है।

ईहा

अवग्रह ग्रहीत विषय पर ईहा की क्रिया होती है, अवग्रहीत विषय के सम्बन्ध में अधिक—विशेष जानने की स्पृहा का नाम ईहा है। अर्थात् अवग्रहीत विषय के प्राणिधान Perceptual attention (विचारणा) को ईहा कहते हैं।

अवाय

यह परिपूर्ण इन्द्रिय ज्ञान की तीसरी भूमिका है। ईहित विषय के सम्बन्ध में सविशेष ज्ञान का नाम अवाय है।—इसे Perceptual determination (निर्धार) कह सकते हैं।

धारणा

धारणा इन्द्रिय ज्ञान के विषय को स्थितिशील करती है।- इसे Perceptual retention कह सकते हैं। धारणा की भूमिका ही इन्द्रिय ज्ञान की परिपूर्णता है।

अवग्रह आदि के और भी बहुत से सूक्ष्म भेद हैं, परन्तु विस्तार हो जाए या विषय क्लिष्ट हो जाए इस भय से उन्हें छोड़ दिया गया है।

विद्वज्जन इतने ही से यह बात समझ सकते हैं कि आधुनिक युरोपीय विद्वानों ने Perception के विकास का जो क्रम बतलाया है उसका विवरण जैन पण्डितों ने पहले ही से शुद्ध मतिज्ञान के प्रकरण में कर दिया है।

स्मृति

मतिज्ञान के दूसरे प्रकार का नाम स्मृति है। इससे इन्द्रिय-ज्ञान के विषय का स्मरण होता है। स्मृति को पाश्चात्य वैज्ञानिक Recollection अथवा Recognition कहते हैं। Hobbes के मतानुसार तो स्मरण का विषय अथवा Idea केवल मरणोन्मुख इन्द्रिय ज्ञान है—Nothing but decaying Sense.

Hume भी यही मानता है। दार्शनिक Reid इस सिद्धान्त का उत्तम रीति से खण्डन करता है। वह कहता है कि स्मरण के विषय को इन्द्रिय-ज्ञान-विषय की अपेक्षा अवश्य है और उसमें सादृश्य भी है, तथापि कितने ही अंशों में यह विषय नवीन है। ऐसा मालूम होता है कि जैन पण्डितों ने हजारों वर्ष पूर्व स्मृति ज्ञान के विषय में जो निर्णय किया था उसी का ये वैज्ञानिक मानो अनुवाद कर रहे हैं और यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है।

संज्ञा

संज्ञा का दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में इसे Assimilation, Comparison और Conception कहते हैं। अनुभूति अथवा स्मृति की सहायता से विषय की तुलना या संकलन द्वारा ज्ञान संगृहीत करने को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। इस प्रत्यभिज्ञान की सहायता से चार प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सकता है—(१) गवय (नील गौ) नामक प्राणी गाय जैसा होता है। अंग्रेजी में इस ज्ञान को Association by Similarity कहते हैं। (२) भैंस नामक प्राणी गाय से भिन्न प्रकार का होता है अर्थात् Association by Contrast। (३) गो-पिंड अर्थात् गाय विशेष को देखने से गोत्व अर्थात् गो सामान्य विषयक ज्ञान होता है। इस सामान्य ज्ञान को अंग्रेजी में Concception कहते हैं। भिन्न-भिन्न विषयों के सामान्य को जैन दर्शन में तिर्यक सामान्य कहा है। इसका पाश्चात्य नाम Species idea है। (४) एक ही पदार्थ की भिन्न-भिन्न परिणति में भी उसी एक एवं अद्वितीय पदार्थ की उपलब्धि होती है। अंगूठी या कुंडल के भिन्न-भिन्न आकारों में भिन्न-भिन्न अलंकार रूप में परिणत होने पर भी, उनमें हम प्रत्यभिज्ञान के प्रताप से सुवर्ण नामक मूल द्रव्य को ही देख सकते हैं। भिन्न-भिन्न परिणतियों में जो द्रव्यगत ऐक्य सामान्य है उसे जैन दर्शन ऊर्ध्वता सामान्य कहता है। ऊर्ध्वता सामान्य का पाश्चात्य नाम Substratum अथवा Esse है।

[क्रमशः

जैन पत्र पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कथालोक || जून १९८०

इस अंक में है जैन कथा 'पेथड़ कुमार' (धीरजलाल टोकरसी शाह) ।

जिनवाणी || जून १९८०

आचार्य श्री हस्तीमलजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन कर्म सिद्धान्त : बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया (३)' (डा० सागरमल जैन), 'सुख शान्ति व मुक्ति का उपाय : त्याग' (कन्हैयालाल लोढ़ा), 'स्याद्वाद महाकाव्यों के परिप्रेक्ष्य में' (देवदत्त शर्मा), 'आचारांग सूत्र की एक अज्ञात टीका—आचार चिन्तामणि' (अगरचन्द नाहटा) ।

तुलसी प्रज्ञा || फरवरी-मार्च १९८०

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'श्री मज्जयाचार्य रचित झीणी चरचा' (मुनि नवरत्नमल), 'स्याद्वाद के महान् उपदेशक : भगवान महावीर' (साध्वी राजीमती), 'एक अपूर्ण प्राप्त अज्ञात प्राचीन ऐतिहासिक काव्य—वादिदेव सूरि चरित्र' (अगरचन्द नाहटा), 'जैन वाङ्मय में नारी शिक्षा' (डा० निशानन्द शर्मा), 'A Further Selection of the Researches in Jainology by Foreigners', 'A Random List of the Works on Jainology by Indian Scholars' (Dr. Nathmal Tatia).

श्रमण || जून १९८०

इस अंक में है 'संयम : जीवन का सम्यक् दृष्टिकोण' (डा० सागरमल जैन), 'जैन धर्म की प्रासंगिकता' (डा० निजामुद्दिन) ।

Vol. IV No. 3 : Titthayara : July 1980
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT.. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001